रश्मि पाठक

स्वामी विवेकानंद:
जागृति और प्रकाश की ओर

(आत्मकथ्य)

रश्मि पाठक

JAIRAJ

अपनी बात

प्रिय पाठकों,

देखा जाए तो हमारे जीवन में हमें एक गुरु की परम आवश्यकता होती है, जो हमें हमारे जीवन के लक्ष्य को समझने में हमारी मदद करें। कई विचारक, वक्ता और महापुरुष आदि को पढ़ने-समझने का मौका मिला, लेकिन जैसा की माना जाता है, उन सबों में जिनके विचार सर्वाधिक रूप से हमें जीवन का लक्ष्य निर्धारण की प्रेरणा देते हैं उन्हीं को हम आदर्श मानते हैं। स्वामी विवेकानंद को पढ़ना ना सिर्फ उनके जीवन को जानना है, बल्कि उनके संपूर्ण जीवनकाल को अनुभव करने जैसा है।

स्वामी विवेकानंद को पढ़ना, उनके बारे में जानना इस प्रेरणा से गुजरने जैसा है कि जीवन में लक्ष्य का निर्धारित होना और उस एकमात्र लक्ष्य के लिए किस साहस की जरूरत होती है। उन्हें सिर्फ पढ़ लेने भर से नहीं, अपितु उनसे जुड़े हर अनुभव से सीख लेने से जीवन के मार्ग सरल होंगे।

स्वामी विवेकानंद जी के जीवन और उनके जीवन की कुछ खास घटनाओं, अमृत वचन को इस किताब में मैंने संजोने की कोशिश की है। हालांकि उनके विचारों की विशालता को शब्दों में समेटना इतना सरल नहीं है, फिर भी एक कोशिश है और उम्मीद है यह पुस्तक आप पाठकों को पसंद आयेगी।

धन्यवाद!

रश्मि पाठक

अनुक्रम

स्वामी विवेकानंद:
जागृति और प्रकाश की ओर

"उतिष्ठत। जागृत। प्राप्य वरान्निबोधत।"

अर्थात् "उठो । जागो । और तब तक नहीं रुको
जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो जाये ।"

यह सुक्ति स्वामी विवेकानंद जी ने कहे थे, जिन्हें हम महान दार्शनिक, संत, विचारक, समाज सेवी, वेदान्त के ज्ञाता, प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में जानते हैं। उन्होंने अपने विचारों से लोगों की सोच और व्यक्तित्व को जागृत किया और जिनके विचार लोगों के लिए अमूल्य जीवन निधि के रूप में हैं।

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी 1863 को एक कुलीन बंगाली परिवार में कोलकाता में हुआ था। उनके बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था, जिनके पिता विश्वनाथ दत्त कोलकाता हाईकोर्ट के एक

प्रसिद्ध वकील थे। नरेन्द्र की माता भुवनेश्वरी देवी एक धार्मिक विचारों वाली महिला थीं, जिनका अधिकांश समय भगवान शिव की पूजा में व्यतीत होता था। अपने नौ भाई-बहन में एक नरेन्द्र बाल्यकाल से ही प्रखर बुद्धि वाले थे और जिनका बचपन घर के धार्मिक, प्रगतिशील और तर्कसंगत वातावरण में व्यतीत हुआ था। उनके दादाजी श्री दुर्गाचरण दत्त संस्कृत और फारसी के विद्वान थे, जिन्होंने 25 वर्ष की आयु में अपना घर-परिवार छोड़ दिया था और एक सन्यासी का जीवन अपना लिया था। घर में उनकी माता भुवनेश्वरी देवी को रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों को सुनने का बहुत शौक था, जिसके कारण उनके घर में कथा- वाचक आते रहते थे। घर में श्लोक-मंत्र और भजन-कीर्तन का वातावरण रहता था। इन सब का असर बालक नरेन्द्र पर व्यापक रूप से हुआ था और उनके विचारों को सुदृढ आकार मिला था।

सन् 1871 में आठ साल की उम्र में नरेन्द्र ने ईश्वर चंद्र विधासागर के मेट्रोपोलिटन संस्थान में दाखिला लिया जहाँ वे स्कूली शिक्षा ग्रहण करने गये। परंतु 1877 में उनका परिवार किसी कारणवश रायपुर चला गया था, जिससे उनकी पढाई बाधित हुई थी। 1879 में कोलकाता वापसी के बाद प्रेसीडेन्सी कॉलेज की प्रवेश परीक्षा में प्रथम स्थान लाने वाले वे पहले छात्र थे। दर्शनशास्त्र, इतिहास, सामजिक विज्ञान, कला, साहित्य, धर्म आदि विषयों में उनकी गहरी रूचि थी। उन्होंने वेद, उपनिषद, भगवत गीता, रामायण, महाभारत के अतिरिक्त अनेक हिंदू शास्त्रों का गहनता से अध्ययन किया था। उनकी रुचियों और अध्ययन का प्रभाव उनके पूरे व्यक्तित्व पर था, जो उनके ज्ञान, उनकी जानकारी,

उनकी बातों से झलकती थी। इन सब के साथ नरेंद्र ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रशिक्षण लिया था और वे नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम करते और खेल में भाग लेते थे। नरेंद्र ने पश्चिमी तर्क, पश्चिमी दर्शन और यूरोपीय इतिहास को भी पढ़ा था जिसके अध्ययन के लिए वे "जनरल असेंबली इंस्टिट्यूशन" जो अब "स्कॉटिश चर्च कॉलेज" के नाम से जाना जाता है, गये थे। उन्होंने 1881 में ललित कला की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और 1884 में कला विषय में स्नातक किया था। नरेंद्र का कहना था–

"जो भी करो पूरे ध्यान से करो वरना नहीं करो।"

बाल्यकाल से ही नरेंद्र के विचार सुनने योग्य थे, वे जो भी कहते उसे लोग बहुत ही ध्यान से सुनते थे। अपने बचपन में नरेंद्र भी साथियों से शरारत करने के साथ ही साथ शिक्षकों से भी शरारत करने से नहीं चूकते थे।

उनकी बचपन से जुड़ी एक घटना है कि एक दिन विधालय में कक्षा के बीच जब शिक्षक पढ़ा रहे थे तब नरेंद्र साथी छात्रों से बातें कर रहे थे। अन्य छात्र नरेंद्र से बातें करने में लगे थे जबकि नरेंद्र का ध्यान अध्यापक द्वारा पढ़ाए जा रहे विषय पर भी पूरी तरह था। कक्षा अध्यापक ने जब छात्रों को आपस में बातें करते हुए पाया, तो उन्होंने सभी छात्रों से पाठ के विषय में प्रश्न करना शुरू किया। अन्य किसी भी छात्र ने प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया, जबकि नरेंद्र ने सभी प्रश्नों का सही–सही उत्तर दिया। यह देखकर अध्यापक ने नरेंद्र को छोड़कर पूरी कक्षा को सजा देने के लिए

खड़ा कर दिया। इस बात से नरेंद्र ने उठकर अध्यापक को कहा कि क्षमा करें गुरुजी, मेरे कारण सभी छात्र दंड के पात्र बने हैं यदि मैं उनसे बात नहीं करता तो सभी अध्यापन में ध्यान देते, अतः सजा का हकदार मैं भी हूँ। आप जो भी सजा देना चाहते हैं मुझे स्वीकार है। कक्षा अध्यापक ने नरेंद्र की बात सुनी और उनका मन करुणा से भर उठा। उन्होंने तब भविष्यवाणी की थी, की "यह बालक भविष्य में अखंड भारत के लिए एक मिसाल बनेगा और विश्व में भारतवर्ष की पहचान बनाएगा।"

नरेंद्रनाथ के इस विचार ने स्वयं उनके व्यक्तित्व पर अमिट छाप बनाई थी- "हम वह बन जाते हैं जो हम सोचते हैं, इसीलिए इस बात का हमेशा ध्यान रखें कि आप क्या सोचते हैं। मनुष्य का दृष्टिकोण और सोचने का नजरिया ही भविष्य का निर्माण करता है, इसलिए हमेशा दूसरों के लिए सकारात्मक और अच्छे विचार रखें।" नरेंद्र कई दर्शनशास्त्रियों, विचारकों से प्रभावित थे और उन्होंने उनका गहनता से अध्ययन किया था। उन्होंने स्पेंसर की किताब 'एजुकेशन' का बांग्ला अनुवाद भी किया था। वे स्पेंसर के विकासवाद से खास प्रभावित थे। पश्चिमी दार्शनिकों के अध्ययन के साथ संस्कृत ग्रंथों और बांग्ला साहित्य को भी गहराई से नरेंद्र ने पढ़ा था। उनके बारे में विलियम ने लिखा था, "नरेंद्र वास्तव में एक जीनियस हैं। मैंने काफी विस्तृत और बड़े इलाकों में यात्राएं की हैं, लेकिन उनके जैसा प्रतिभा वाला एक भी बालक नहीं देखा।"

नरेंद्र को श्रुतिधर यानि विलक्षण स्मृति वाला भी कहा गया है, क्योंकि वे किसी भी पुस्तक को एक बार पढ़ कर ही अपने स्मृति में समाहित करने की क्षमता रखते थे।

ज्ञान की खोज

अध्ययन के समय ही उन्होंने अपने विचारों से लोगों में नई सोच और विचारधारा का प्रवाह किया। सन 1880 में उनका झुकाव ब्रह्म समाज की ओर हुआ था और वे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के संपर्क में रहे थे। उन्होंने तब अपनी जिज्ञासु प्रवृति के कारण महर्षि से प्रश्न किया था, "क्या आपने ईश्वर को देखा है?"

नरेंद्र की जिज्ञासा शांत करने के उद्देश्य से महर्षि ने तब उन्हें रामकृष्ण परमहंस के पास जाने की सलाह दी थी। "जिस प्रकार हर झरने का पानी अलग-अलग, टेढ़े-मेढ़े रास्तों से गुजरता हुआ नदी में मिलता है, उसी प्रकार मनुष्य द्वारा चुना हुआ अच्छा या बुरा मार्ग ईश्वर तक ही लेकर जाता है।"

रामकृष्ण परमहंस का जन्म 18 फरवरी 1836 को बंगाल प्रांत में हुआ था जो कोलकाता के निकट दक्षिणेश्वर काली मंदिर के पुजारी थे। उनकी कठोर साधना ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुंचाया था कि दुनिया की सभी धर्म सच्चे हैं और उनमें कोई भिन्नता नहीं है। रामकृष्ण परमहंस के साथ भेंट के दौरान नरेंद्रनाथ ने सुस्वर एक गाना गाया था, जिससे मंत्रमुग्ध रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें दक्षिणेश्वर आने का निमंत्रण दिया था। दक्षिणेश्वर पहुंचकर नरेंद्र ने उनसे अपना वही प्रश्न पूछा था कि "क्या आपने ईश्वर को देखा है?"

नरेंद्र के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए रामकृष्ण परमहंस ने कहा था "हाँ क्यों नहीं उन्हें भी वैसे ही देखा जा सकता है जैसे तुम्हें देख रहा हूं, परंतु ऐसा करना कौन चाहता है। लोग धन दौलत के लिए अथवा किसी

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

अर्थात जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं
उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते
से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

Paperback ₹100